जीवन संधिकाल में परिवर्तन अवसर है...

तीव्र परिवर्तन के युग में जीवन-संयम...

मनुष्य को रूपांतरित होने की शक्ति देती है...

नचिकेता अग्नि विद्या

संसार में सबसे चिरंजीवी मनुष्य का स्वभाव है। संवत्सर, वर्ष, काल, बदलते रहते है लेकिन मनुष्य का स्वभाव युगों-युगों पहले था वैसा ही आज भी है। दान की प्रवृति में पहले भी दिखावा बहुत था और आज भी है। श्रेष्ठ दान वह है जो समाज के लिये उपयोगी, सार्थक और उन्नति प्रदायक हो।

इस सम्बन्ध में कठोपनिषद् में उद्दालक यज्ञ और उनके पश्चात उनके पुत्र नचिकेता और यम का संवाद बहुत महत्वपूर्ण है। मानव समाज की गहराईयों को प्रकट करते इस संवाद को प्रत्येक साधक समझे और चिन्तन करें कि उसका स्वभाव किस दिशा में जाना चाहिये। जो आज बाजार में जाकर किसी पूजा पर्व के समय यजमान पंडित जी के वस्त्रों का नाम लेकर दुकानदार को यह बताया जाता है कि उसे किस प्रकार के वस्त्र चाहिए और फिर अत्यन्त निम्न कोटि के वस्त्रों को दान के नाम पर दे दिया जाता है। वह वास्तव में केवल दान का स्वांग होता है। यह कोई आज की बात नहीं है।

महर्षि उद्दालक को मुक्ति की कामना हुई। उन्होंने अपना सम्पूर्ण धनधान्य दान कर देने का संकल्प लिया। उनका नचिकेता नाम का एक पुत्र था। **'नचिकेता' का शाब्दिक अर्थ है जो नहीं जानता, जिज्ञासु।**

नचिकेता अभी बालक ही था, किन्तु उसने देखा कि **मुक्ति की कामना से पिता महर्षि उद्दालक जिन गौओं का दान कर रहे थे, वे अत्यन्त वृद्ध थीं। उन्हें देना या न देना लगभग एकसा ही था। यह केवल दान का स्वांग भर था।**

दान का यह स्वांग देखकर नचिकेता को अत्यन्त दुःख हुआ। उसने अपने पिता से पूछा, आप अपना सम्पूर्ण धन-धान्य दान करने का निर्णय ले चुके हैं। पुत्र भी पिता का ही धन होता है, तो मुझे आप किसे दान में देंगे?

महर्षि उद्दालक ने नचिकेता की बात अनसुनी कर दी। पर नचिकेता मानने वाला कहां था। उसने दूसरी बार पूछा, मुझे किसे दान में देंगे? और फिर तीसरी बार भी वही प्रश्न किया, मुझे किसे दान में देंगे?

तीसरी बार वही प्रश्न सुनकर महर्षि उद्दालक को क्रोध आ गया। उन्होंने कहा - ***'मृत्यवे त्वां ददामि इति।'*** **अर्थात् मैं तुम्हें मृत्यु को देता हूं...**

पिता का यह कहना कि **'मैं तुम्हें मृत्यु को दूंगा...'** एक प्रकार से रूपक है, एक उपमा है। यह संवाद कुछ वैसा ही है जैसा कुछ वर्ष पहले तक घरों में देखा जाता था, जब संतान से अत्यंत क्रुद्ध होकर माताएं ऐसे ही कह देती थीं, 'जा, मर जा।' महर्षि उद्दालक का यह कथन भी उसी भावभूमि का रहा होगा, मैं तुम्हें मृत्यु को देता हूं।

नचिकेता के अत्यधिक प्रश्न से महर्षि उद्दालक क्रोधित हो गए। देने की वृत्ति तो थी नहीं, पर दान करने चले थे।

वास्तव में वे केवल वही धन निकाल रहे थे जो स्वयं के लिए अनुपयोगी हो गया था। वर्तमान युग इसका आधुनिक संस्करण है अपने पुराने, थके हुए वस्त्र या अनुपयोगी उपकरण किसी और को दान में दे देना।

नचिकेता ने सोचा, मृत्यु मेरा क्या कर लेगी?

किंतु वह युग ऐसा नहीं था। वह युग ऐसा था कि जो कहा जाता था, वही घटित हो जाता था।

नचिकेता यम के द्वार पर पहुंचा। वह अग्नि की भांति दैदीप्यमान था। यम के पुत्र वैवस्वत उसके लिए जल आदि लाते हैं, पूछताछ करते हैं कि क्या उसे कुछ खाना-पीना चाहिए, पर नचिकेता शांत चित्त होकर यम के लौटने की प्रतीक्षा करता रहा।

नचिकेता बिना कुछ खाए-पीए तीन दिनों तक यमराज के लौटने की प्रतीक्षा करता रहा।

जब यमाचार्य लौटे तो उन्होंने कहा - **हे नमस्कार के योग्य ब्राह्मण! हे अतिथि! तुम तीन रात्रियां बिना भोजन के मेरे घर में रहे हो। तुम्हें मेरा प्रणाम है।**

तुमसे पूछताछ की गई, फिर भी तुम बिना कुछ खाए-पीए मेरी प्रतीक्षा करते रहे। तुम मेरे अतिथि थे और तीन दिनों तक भूखे रहे। **मैं पाप का भागी नहीं बनना चाहता, इसलिए मैं तुम्हें तीन वर देना चाहता हूं।**

नचिकेता ने पहला वर मांगा कि, **मेरे पिता का मन शांत हो जाए, उनका क्रोध समाप्त हो जाए।**

नचिकेता ने दूसरा वर मांगा, **स्वर्ग साधक अग्नि का ज्ञान। वह अग्नि जो स्वर्ग की ओर ले जाती है।**

स्वर्ग में यम यहां गुरु की भूमिका में हैं। वैसे भी गुरु मृत्यु के समान होता है, क्योंकि उसके द्वार पर हमारे अहंकार की, हमारे अज्ञान की मृत्यु हो जाती है। नचिकेता स्वर्ग साधक अग्नि के रहस्यमय ज्ञान के विषय में जानना चाहता है।

एक उत्तम गुरु की भांति यम उसे बताते हैं कि स्वर्ग होता क्या है? जब तक यह न जाना जाए कि स्वर्ग है क्या, तब तक उस अग्नि को जानकर क्या होगा जो वहां ले जाती है?

स्वर्ग सुख और सुविधाओं की पराकाष्ठा है, वहां न भूख है, न वृद्धावस्था। भूख नरक का द्वार है और वृद्धावस्था कलह का द्वार है।

यमराज ने नचिकेता को स्वर्ग साधक अग्नि का ज्ञान दिया। नचिकेता शांत चित्त होकर उसे सुनता रहा। उसके ज्ञान और पात्रता से अभिभूत होकर यमराज बोले - 'आज से इस स्वर्ग साधक अग्नि का नाम 'नचिकेता अग्नि' होगा।'

उन्होंने उसे एक माला भी दी, जो 'त्रि-नचिकेत' कहलाती है। जो ब्रह्मचर्य, गृहस्थ और वानप्रस्थ इन तीनों संधियों में **'नचिकेता अग्नि'** की साधना करता है, वह इस संसार से तर जाता है।

ये संधियां जीवन के साधारण मोड़ नहीं, बल्कि चेतना के गहरे पड़ाव हैं। जैसे दिन और रात के बीच की संधि केवल समय का परिवर्तन नहीं होती, बल्कि प्रकाश और अंधकार के संतुलन का क्षण होती है। वैसे ही संधियां व्यक्ति के भीतर घटित होने वाले रूपांतरण का संकेत हैं।

ब्रह्मचारी को एक समय पर संधि पार कर गृहस्थ बनना होता है। यह केवल विवाह या जिम्मेदारियां ग्रहण करने का निर्णय नहीं है, यह उस अहं का विसर्जन है जो केवल स्वयं के लिए जीता था। यहां व्यक्ति **'मैं'** से **'हम'** की यात्रा करता है। इसके बाद गृहस्थ को भी एक संधि पार करनी होती है, वानप्रस्थ में प्रवेश की। **यह वह अवस्था है जहां मनुष्य धीरे-धीरे आसक्ति से विरक्ति की ओर बढ़ता है, जहां कर्तव्य रहते हैं पर पकड़ ढीली होने लगती है और जो वन की ओर गया है, उसे अंततः संन्यास भाव में प्रवेश करना होता है। जहां न केवल वस्तुओं का, बल्कि कर्तृत्व के भाव का भी त्याग हो जाता है।**

इन तीन संधियों को पार करना ही वास्तव में तीन कर्म हैं। **कर्म केवल बाहरी क्रिया नहीं है; कर्म वह आंतरिक साहस है,** जो पुरानी पहचान को छोड़कर नई अवस्था में प्रवेश करने के लिए चाहिए। जो व्यक्ति इन संधियों को पार नहीं करता, वह किसी एक आश्रम में अटक कर रह जाता है **या तो जीवन भर जिम्मेदारी से भागता रहता है, या जिम्मेदारी को ही जीवन का अंतिम सत्य मान लेता है, या फिर त्याग का अभिनय करता है पर भीतर से मुक्त नहीं हो पाता।**

प्रत्येक संधि से गुजरने पर एक नचिकेता अग्नि उत्पन्न होती है। यह अग्नि बाहरी नहीं, भीतर जलने वाली अग्नि है जिज्ञासा की, प्रश्न की, सत्य को जानने की। जैसे **ब्रह्मचर्य से गृहस्थ में प्रवेश करते समय एक अग्नि प्रकट होती है, जो व्यक्ति से पूछती है 'क्या तुम केवल अपने लिए जीओगे, या जीवन को आगे बढ़ाओगे?' उसी प्रकार गृहस्थ से आगे बढ़ते समय अग्नि पूछती है 'क्या तुम संग्रह में अटके रहोगे, या सार को पहचानोगे?'**

प्रत्येक संधि से निकलने पर जो अग्नि उत्पन्न होती है, वही मनुष्य को अमृत की ओर ले जाती है। क्योंकि अमृत कोई वस्तु नहीं, एक अवस्था है जहां जीवन का भय समाप्त हो जाता है। जो इन अग्नियों से डरता नहीं, जो प्रश्न से भागता नहीं, वही नचिकेता की तरह मृत्यु के द्वार पर भी ज्ञान की याचना कर पाता है।

इसलिए संधियों से बचना नहीं चाहिए। संधियां संकट नहीं, अवसर हैं। वे जीवन को तोड़ती नहीं, परिष्कृत करती हैं और जो संधि को साहस के साथ पार कर लेता है, वही अंततः जीवन के पार के सत्य को उपलब्ध होता है।